[2009] 3 एस. सी. आर 326

सुंदर बाबू एवं एक अन्य

बनाम

तमिलनाडु राज्य

(2003 की दांडिक अपील संख्या 773)

19 फरवरी, 2009

(डॉ. अरिजीत पसायत, लोकेश्वर सिंह पंत एवं पी. सतशिवम, न्यायमूर्ति गण)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 — धारा 482 - कार्यवाही का अपास्तीकरण — पति, उसके माता-पिता, बहन एवं नानी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन परिवाद — विवाह के छह माह बाद पति कथित रूप से यू.एस.ए. चला गया — परिवाद बहुत विलंब से दायर किया गया — परिवाद दायर करने में विलंब का कोई स्पष्टीकरण नहीं — धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन याचिका निरस्त — अपील पर धारित : धारा 482 के अधीन हस्तक्षेप का क्षेत्र सीमित है — तथापि, दुर्लभतम मामलों में हस्तक्षेप किया जा सकता है, जैसा कि भजन लाल के मामले में प्रतिपादित किया गया है — वर्तमान मामले में परिवाद का सरसरी अवलोकन यह दर्शाता है कि यह मामला भजन लाल के निर्णय में उल्लिखित दृष्टांतात्मक मापदंडों की श्रेणी (7) के अंतर्गत आता है — उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन याचिका निरस्त करने में त्रुटि की गई — भारतीय दंड संहिता, 1860 — धारा 498क — दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 — धारा 4।

अपीलकर्ता संख्या 1 की पत्नी ने उसके तथा उसके माता-पिता, बहन एवं नानी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 4 के अधीन दंडनीय अपराध किए जाने का आरोप लगाते हुए परिवाद दायर किया। अपीलकर्ता संख्या 1 विवाह के छह माह बाद यू.एस.ए. चला गया था। परिवाद काफी विलंब से दायर किया गया। परिवाद दायर करने में हुए विलंब का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया।

अपीलकर्ताओं ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका दायर करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि परिवाद याचिका उन्हें मिथ्या रूप से फँसाने का मात्र एक प्रयास है

तथा उनके विरुद्ध कार्यवाही को जारी रखना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। उच्च न्यायालय ने उक्त याचिका निरस्त कर दी। अतः वर्तमान अपील दायर की गई।

अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारित: 1.1 यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय हस्तक्षेप का क्षेत्र सीमित है, तथापि *भजन लाल* के मामले में प्रतिपादित परिस्थितियों में हस्तक्षेप किया जा सकता है। वहाँ प्रतिपादित दृष्टांतात्मक उदाहरण निम्नलिखित हैं : 1) जहाँ प्रथम सूचना प्रतिवेदन अथवा परिवाद में लगाए गए आरोप, यदि उन्हें उनके पूर्ण रूप में स्वीकार भी कर लिया जाए तथा यथावत् मान लिया जाए, तब भी प्रथमदृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते हों अथवा अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला स्थापित नहीं करते हों; 2) जहाँ प्रथम सूचना प्रतिवेदन तथा उसके साथ संलग्न अन्य सामग्री, यदि कोई हो, किसी संज्ञेय अपराध का प्रकटन नहीं करती हो, जिससे संहिता की धारा 156(1) के अधीन पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्वेषण न्यायसंगत हो, सिवाय इसके कि संहिता की धारा 155(2) के अधीन किसी दंडाधिकारी के आदेश से ऐसा किया गया हो; 3) जहाँ प्रथम सूचना प्रतिवेदन अथवा परिवाद में किए गए अप्रतिवादित आरोप तथा उनके समर्थन में संकलित साक्ष्य किसी अपराध के किए जाने का प्रकटन नहीं करते हों और अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला स्थापित नहीं करते हों; 4) जहाँ प्रथम सूचना प्रतिवेदन में किए गए आरोप संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हों, बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध का प्रकटन करते हों, ऐसी स्थिति में संहिता की धारा 155(2) के अधीन दंडाधिकारी के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण अनुमत नहीं है; 5) जहाँ प्रथम सूचना प्रतिवेदन अथवा परिवाद में लगाए गए आरोप इतने असंगत एवं स्वभावतः अविश्वसनीय हों कि उनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति इस निष्कर्ष पर न पहुँच सके कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही चलाने हेतु पर्याप्त आधार विद्यमान है; 6) जहाँ संहिता अथवा संबंधित अधिनियम के किसी उपबंध में, जिसके अधीन आपराधिक कार्यवाही संस्थित की गई हो, कार्यवाही के संस्थापन एवं उसके जारी रहने पर स्पष्ट विधिक प्रतिबंध अधिरोपित हो अथवा संहिता अथवा संबंधित अधिनियम में पीड़ित पक्ष की शिकायत के प्रभावी निवारण हेतु कोई विशिष्ट उपबंध विद्यमान हो; 7) जहाँ कोई आपराधिक कार्यवाही प्रत्यक्षतः *दुर्भावना* से प्रेरित हो और / अथवा जहाँ कार्यवाही अभियुक्त से निजी एवं व्यक्तिगत वैमनस्य की पूर्ति हेतु प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से द्वेषपूर्ण रूप से संस्थित की गई हो। [कंडिका 6] [332-बी-एच; 333-ए-सी]

1.2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 उच्च न्यायालय को कोई नई शक्ति प्रदान नहीं करती है। यह केवल उस अंतर्निहित शक्ति का संरक्षण करती है, जो संहिता के अधिनियमन से पूर्व न्यायालय के पास विद्यमान थी। यह तीन परिस्थितियों का प्रावधान करती है, जिनमें अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है, अर्थात्—(i) संहिता के अधीन पारित किसी आदेश को प्रभावी बनाने हेतु; (ii) न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु; तथा (iii) न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति सुनिश्चित करने हेतु। ऐसा न तो संभव है और न ही वांछनीय कि कोई कठोर एवं अपरिवर्तनीय नियम प्रतिपादित किया जाए, जो अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करे। प्रक्रिया से संबंधित कोई भी विधायी अधिनियम उन सभी परिस्थितियों का प्रावधान नहीं कर सकता, जो उत्पन्न हो सकती हैं। अतः न्यायालयों के पास, विधि के स्पष्ट उपबंधों से पृथक, ऐसी अंतर्निहित शक्तियाँ होती हैं, जो उन पर विधि द्वारा अधिरोपित कर्तव्यों एवं कार्यों के समुचित निर्वहन हेतु आवश्यक होती हैं। यही वह सिद्धांत है, जिसका प्रकटीकरण उस धारा में होता है, जो केवल उच्च न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों को मान्यता प्रदान करती है एवं उनका संरक्षण करती है। सभी न्यायालय, चाहे वे दीवानी हों अथवा आपराधिक, अपने गठन के कारण, किसी स्पष्ट उपबंध के अभाव में भी, ऐसी समस्त शक्तियों से संपन्न होते हैं, जो न्याय के समुचित प्रशासन हेतु आवश्यक हों तथा *"जब कानून किसी को कोई अधिकार या चीज़ देता है, तो वह उन सभी आवश्यक चीज़ों (शक्तियों) को भी प्रदान करता है जिनके बिना वह अधिकार या चीज़ स्वयं अधूरी या अनुपयोगी होगी।"* के सिद्धांत के अनुसार न्याय-प्रक्रिया में उत्पन्न किसी त्रुटिपूर्ण स्थिति को सुधारने अथवा निरस्त करने के लिए आवश्यक हों (अर्थात् जब विधि किसी व्यक्ति को कोई अधिकार प्रदान करती है, तब वह वह सब कुछ भी प्रदान करती है जिसके बिना वह अधिकार अस्तित्व में नहीं रह सकता)। [कंडिका 9] [333-ई-एच; 334-ए-बी]

1.3 धारा 482 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय अपील या पुनरीक्षण न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है। यद्यपि उक्त धारा के अधीन अंतर्निहित क्षेत्राधिकार व्यापक है, तथापि उसका प्रयोग संयमपूर्वक, सावधानी के साथ तथा केवल तभी किया जाना चाहिए जब ऐसा प्रयोग धारा में विशेष रूप से प्रतिपादित कसौटियों के अनुसार न्यायोचित हो। इस शक्ति का प्रयोग *न्यायोचित कारणवश* वास्तविक एवं सारभूत न्याय करने के लिए किया जाना चाहिए, क्योंकि न्याय के प्रशासन हेतु ही न्यायालयों का अस्तित्व है। न्यायालय की क्षेत्राधिकार का अस्तित्व न्याय की उन्नति के लिए है और यदि उस क्षेत्राधिकार का दुरुपयोग कर अन्याय उत्पन्न करने का कोई प्रयास किया जाता है, तो

न्यायालय के पास ऐसे दुरुपयोग को रोकने की शक्ति है। न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा यदि किसी ऐसी कार्यवाही को जारी रहने दिया जाए, जिसके परिणामस्वरूप अन्याय उत्पन्न हो तथा न्याय की प्रगति अवरुद्ध हो। इन शक्तियों के प्रयोग में न्यायालय किसी भी कार्यवाही को अपास्त करने के लिए उस स्थिति में न्यायोचित होगा, यदि वह यह पाता है कि उस कार्यवाही का संस्थापन अथवा उसका जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है अथवा उन कार्यवाहियों को अपास्त करना अन्यथा न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करेगा। [कंडिका 9] [334-बी-ई]

1.4. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियाँ अत्यंत व्यापक हैं और उनकी व्यापकता के कारण उनके प्रयोग में अत्यधिक सावधानी अपेक्षित है। न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि अपनी अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग का निर्णय सुदृढ़ सिद्धांतों पर आधारित हो। अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग वैध अभियोजन को विफल करने हेतु नहीं किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय, जो राज्य का सर्वोच्च न्यायालय है, सामान्यतः प्रथमदृष्टया निर्णय देने से विरत रहेगा, विशेषकर उन मामलों में जहाँ समस्त तथ्य अपूर्ण एवं अस्पष्ट हों, और उससे भी अधिक तब, जब न्यायालय के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत न किए गए हों तथा संलिप्त विषय, चाहे तथ्यात्मक हों अथवा विधिक, इतने गंभीर हों कि उन्हें उनके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जा सकता हो। निस्संदेह, ऐसा कोई कठोर एवं अपरिवर्तनीय नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता कि उच्च न्यायालय किस प्रकार किसी भी चरण पर कार्यवाही अपास्त करने की अपनी असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करे। [कंडिका 10] [334-ई-एच; 335-ए]

1.5. वर्तमान मामले में परिवाद का सरसरी अवलोकन भी यह दर्शाता है कि यह मामला *भजन लाल* के मामले में प्रतिपादित दृष्टांतात्मक मापदंडों की श्रेणी (7) के अंतर्गत आता है। अतः न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष लंबित आपराधिक परिवाद की कार्यवाही अपास्त की जाती है। [कंडिका 7 एवं 10] [333-डी]

हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 ए.आई.आर. 604; *जनता दल बनाम एच.एस. चौधरी,* (1992) 4 एस.सी.सी. 305; *रघुबीर सरन (डॉ.) बनाम बिहार राज्य,* ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1; तथा *मिनू कुमारी बनाम बिहार राज्य,* (2006) 4 एस.सी.सी. 359 — पर भरोसा किया गया।

नजीर संदर्भ:

1992 ए.आई.आर. 604	**—**	**अवलम्बित**	**—**	**कंडिका 5**
(1992) 4 एस.सी.सी. 305	**—**	**अवलम्बित**	**—**	**कंडिका 9**
ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1	**—**	**अवलम्बित**	**—**	**कंडिका 9**
(2006) 4 एस.सी.सी. 359	**—**	**अवलम्बित**	**—**	**कंडिका 9**

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2003 की आपराधिक अपील संख्या 773

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक मूल याचिका संख्या 6510/2003 में दिनांक 10.03.2003 को पारित निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ताओं की ओर से : जोसेफ पूक्कट्ट,गौरव अग्रवाल और प्रशांत कुमार।

उत्तरदाता की ओर से : एस. धनंजयन।

न्यायालय का निर्णय **डॉ. अरिजीत पसायत, न्यायमूर्ति** द्वारा दिया गया।

1. वर्तमान अपील मद्रास उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 482 के अधीन दायर याचिका को निरस्त किए जाने के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है।

2. संक्षेप में पृष्ठभूमि के तथ्य निम्नलिखित हैं :

3. सुकन्या (जिसे आगे 'शिकायतकर्ता' कहा गया है) का विवाह सुंदर बाबू — अपीलकर्ता संख्या 1 — के साथ हुआ था। अपीलकर्ता संख्या 2 श्री वेणुगोपाल तथा श्रीमती रामथिलगम, अपीलकर्ता संख्या 3, सुंदर बाबू के माता-पिता हैं। ए.4 — रजनीश्री उसकी बहन है तथा अंदालम्मल उसकी नानी है। विवाह दिनांक 25.11.1998 को सम्पन्न हुआ। अपीलकर्ता संख्या 1 दिनांक 01.01.1999 को यू.एस.ए. चला गया। शिकायत दिनांक 06.02.2000 को दायर की गई, जिसमें भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'भा.दं.सं.') की धारा 498क तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (संक्षेप में 'द.प्र.अधि.') की धारा 4 के अधीन दंडनीय अपराध किए जाने का आरोप लगाया गया।

4. उक्त शिकायत को प्रथम सूचना प्रतिवेदन के रूप में ग्रहण किया गया तथा अनुसंधान प्रारंभ किया गया। अनुसंधान पूर्ण होने पर आरोपपत्र दिनांक 08.06.2000 को समर्पित किया गया। एक तलाक याचिका शिकायतकर्ता द्वारा दायर की गई थी, जिसमें प्रतीत होता है कि दिनांक 12.07.2001 को *एकतरफा* डिक्री पारित कर दी गई। अपीलकर्ताओं के अनुसार शिकायतकर्ता-सुकन्या ने दिनांक 24.08.2002 को पुनर्विवाह कर लिया। अपीलकर्ताओं का यह पक्ष था कि परिवाद दायर किया जाना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग मात्र था। आरोप निराधार थे। ऐसे आरोप लगाने का कोई आधार नहीं था। अपीलकर्ता संख्या 1 विवाह के छह माह के भीतर ही यू.एस.ए. चला गया था। इसके काफी समय पश्चात् दिनांक 06.02.2000 को शिकायत दायर की गई। शिकायत दर्ज कराने में हुए विलंब का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया। मूलतः यह निवेदन किया गया कि कार्यवाही को जारी रखना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। उच्च न्यायालय के समक्ष अभियोजन संस्था ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन दायर याचिका का यह कहते हुए विरोध किया कि परिवाद का सरसरी अवलोकन कथित अपराधों के किए जाने का प्रकटन करता है और इसलिए यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें कार्यवाही जारी रखने की अनुमति न दी जाए। उच्च न्यायालय ने उत्तरदाता-राज्य के उक्त पक्ष को स्वीकार करते हुए आवेदन निरस्त कर दिया।

5. अपील के समर्थन में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि तथ्यात्मक परिस्थितियाँ इंगित करती हैं कि परिवाद याचिका का सरसरी अवलोकन भी यह दर्शाता है कि वह अभियुक्त व्यक्तियों को मिथ्या रूप से फँसाने का मात्र एक प्रयास था। उत्तरदाता-राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय का समर्थन किया।

6. यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय हस्तक्षेप का क्षेत्र सीमित है, तथापि *भजन लाल* के मामले में प्रतिपादित परिस्थितियों में हस्तक्षेप किया जा सकता है। वहाँ प्रतिपादित दृष्टांतात्मक उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

1. जहाँ प्रथम सूचना प्रतिवेदन अथवा परिवाद में लगाए गए आरोप, यदि उन्हें उनके पूर्ण रूप में स्वीकार कर लिया जाए तथा यथावत् मान लिया जाए, तब भी प्रथमदृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते हों अथवा अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला स्थापित नहीं करते हों।

2. जहाँ प्रथम सूचना प्रतिवेदन तथा उसके साथ संलग्न अन्य सामग्री, यदि कोई हो, किसी संज्ञेय अपराध का प्रकटन नहीं करती हो, जिससे संहिता की धारा 156(1)

के अधीन पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्वेषण न्यायसंगत हो, सिवाय इसके कि संहिता की धारा 155(2) के अधीन किसी दंडाधिकारी के आदेश से ऐसा किया गया हो।

3. जहाँ प्रथम सूचना प्रतिवेदन अथवा परिवाद में किए गए अप्रतिवादित आरोप तथा उनके समर्थन में संकलित साक्ष्य किसी अपराध के किए जाने का प्रकटन नहीं करते हों और अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला स्थापित नहीं करते हों।

4. जहाँ प्रथम सूचना प्रतिवेदन में किए गए आरोप संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हों, बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध का प्रकटन करते हों, ऐसी स्थिति में संहिता की धारा 155(2) के अधीन दंडाधिकारी के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण अनुमत नहीं है।

5. जहाँ प्रथम सूचना प्रतिवेदन अथवा परिवाद में लगाए गए आरोप इतने असंगत एवं स्वभावतः अविश्वसनीय हों कि उनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति इस निष्कर्ष पर न पहुँच सके कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही चलाने हेतु पर्याप्त आधार विद्यमान है।

6. जहाँ संहिता अथवा संबंधित अधिनियम के किसी उपबंध में, जिसके अधीन आपराधिक कार्यवाही संस्थित की गई हो, कार्यवाही के संस्थापन एवं उसके जारी रहने पर स्पष्ट विधिक प्रतिबंध अधिरोपित हो अथवा संहिता अथवा संबंधित अधिनियम में पीड़ित पक्ष की शिकायत के प्रभावी निवारण हेतु कोई विशिष्ट उपबंध विद्यमान हो।

7. जहाँ कोई आपराधिक कार्यवाही प्रत्यक्षतः दुर्भावना से प्रेरित हो अथवा जहाँ कार्यवाही अभियुक्त से निजी एवं व्यक्तिगत वैमनस्य के कारण प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से द्वेषपूर्ण रूप से संस्थित की गई हो।

7. परिवाद का सरसरी अवलोकन भी यह दर्शाता है कि वर्तमान मामला *भजन लाल* (उपर्युक्त) के मामले में प्रतिपादित दृष्टांतात्मक मापदंडों की श्रेणी (7) के अंतर्गत आता है।

8. धारा 482 के अधीन शक्ति के प्रयोग हेतु मापदंड इस न्यायालय द्वारा अनेक मामलों में प्रतिपादित किए गए हैं।

9. उक्त धारा उच्च न्यायालय को कोई नई शक्ति प्रदान नहीं करती है। यह केवल उस अंतर्निहित शक्ति का संरक्षण करती है, जो संहिता के अधिनियमन से पूर्व न्यायालय के पास विद्यमान थी। यह तीन परिस्थितियों का प्रावधान करती है, जिनमें अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है, अर्थात्— (i) संहिता के अधीन पारित किसी आदेश को प्रभावी बनाने हेतु; (ii) न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु; तथा (iii) न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति सुनिश्चित करने हेतु। ऐसा न तो संभव है और न ही वांछनीय कि कोई कठोर एवं अपरिवर्तनीय नियम प्रतिपादित किया जाए, जो अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करे। प्रक्रिया से संबंधित कोई भी विधायी अधिनियम उन सभी परिस्थितियों का प्रावधान नहीं कर सकता, जो उत्पन्न हो सकती हैं। अतः न्यायालयों के पास, विधि के स्पष्ट उपबंधों से पृथक, ऐसी अंतर्निहित शक्तियाँ होती हैं, जो उन पर विधि द्वारा अधिरोपित कर्तव्यों एवं कार्यों के समुचित निर्वहन हेतु आवश्यक होती हैं। यही वह सिद्धांत है, जिसका प्रकटीकरण उस धारा में होता है, जो केवल उच्च न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों को मान्यता प्रदान करती है एवं उनका संरक्षण करती है। सभी न्यायालय, चाहे वे दीवानी हों अथवा आपराधिक, किसी स्पष्ट उपबंध के अभाव में भी, अपने गठन के कारण ऐसी समस्त शक्तियों से संपन्न होते हैं, जो न्याय के समुचित प्रशासन हेतु आवश्यक हों तथा *"जब कानून किसी को कोई अधिकार या चीज़ देता है, तो वह उन सभी आवश्यक चीज़ों (शक्तियों) को भी प्रदान करता है जिनके बिना वह अधिकार या चीज़ स्वयं अधूरी या अनुपयोगी होगी।"* के सिद्धांत के अनुसार न्याय-प्रक्रिया में उत्पन्न किसी त्रुटिपूर्ण स्थिति को सुधारने अथवा निरस्त करने के लिए आवश्यक हों (अर्थात् जब विधि किसी व्यक्ति को कोई अधिकार प्रदान करती है, तब वह वह सब कुछ भी प्रदान करती है जिसके बिना वह अधिकार अस्तित्व में नहीं रह सकता)। उक्त धारा के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय अपील या पुनरीक्षण न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है। यद्यपि उक्त धारा के अधीन अंतर्निहित क्षेत्राधिकार व्यापक है, तथापि उसका प्रयोग संयमपूर्वक, सावधानी के साथ तथा केवल तभी किया जाना चाहिए जब ऐसा प्रयोग धारा में विशेष रूप से प्रतिपादित कसौटियों के अनुसार न्यायोचित हो। इस शक्ति का प्रयोग *न्यायोचित कारणवश* वास्तविक एवं सारभूत न्याय करने के लिए किया जाना चाहिए, क्योंकि न्याय के प्रशासन हेतु ही न्यायालयों का अस्तित्व है। न्यायालय की क्षेत्राधिकार का अस्तित्व न्याय की उन्नति के लिए है और यदि उस क्षेत्राधिकार का दुरुपयोग कर अन्याय उत्पन्न करने का कोई प्रयास किया जाता है, तो न्यायालय के पास ऐसे दुरुपयोग को रोकने की शक्ति है। न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा यदि किसी ऐसी कार्यवाही को जारी रहने दिया जाए, जिसके परिणामस्वरूप अन्याय उत्पन्न हो तथा

न्याय की प्रगति अवरुद्ध हो। इन शक्तियों के प्रयोग में न्यायालय किसी भी कार्यवाही को अपास्त करने के लिए उस स्थिति में न्यायोचित होगा, यदि वह यह पाता है कि उस कार्यवाही का संस्थापन अथवा उसका जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है अथवा उन कार्यवाहियों को अपास्त करना अन्यथा न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करेगा।

10. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियाँ अत्यंत व्यापक हैं और उनकी व्यापकता के कारण उनके प्रयोग में अत्यधिक सावधानी अपेक्षित है। न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि अपनी अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग का निर्णय सुदृढ़ सिद्धांतों पर आधारित हो। अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग वैध अभियोजन को विफल करने हेतु नहीं किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय, जो राज्य का सर्वोच्च न्यायालय है, सामान्यतः प्रथमदृष्टया निर्णय देने से विरत रहेगा, विशेषकर उन मामलों में जहाँ समस्त तथ्य अपूर्ण एवं अस्पष्ट हों, और उससे भी अधिक तब, जब न्यायालय के समक्ष साक्ष्य संकलित एवं प्रस्तुत न किए गए हों तथा संलिप्त विषय, चाहे तथ्यात्मक हों अथवा विधिक, इतने गंभीर हों कि उन्हें पर्याप्त सामग्री के अभाव में उनके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जा सकता हो। निस्संदेह, ऐसा कोई कठोर एवं अपरिवर्तनीय नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता कि उच्च न्यायालय किन मामलों में किसी भी चरण पर कार्यवाही अपास्त करने की अपनी असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा। [देखें : *जनता दल बनाम एच.एस. चौधरी*, (1992) 4 एस.सी.सी. 305; *रघुबीर सरन (डॉ.) बनाम बिहार राज्य*, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1; तथा *मिनू कुमारी बनाम बिहार राज्य*, (2006) 4 एस.सी.सी. 359]।

10. परिणामस्वरूप, यह अपील स्वीकार किए जाने योग्य है। न्यायिक दंडाधिकारी, पल्लादम के समक्ष लंबित आपराधिक याचिका संख्या सी.सी. संख्या 385/2000 की कार्यवाही अपास्त की जाती है।

11. अपील स्वीकार की जाती है।

बी.बी.बी. अपील स्वीकार।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।